स्वास्थ्य रक्षा के पंचतन्त्र

डॉ० बी० वेंकटराव

आरोग्यवान की दिनचर्या

सुबह	४	बजे	उठना, एक ग्लास पानी पीना, शौच आदि।
	४-३०	,,	प्रार्थना, स्वाध्ययन
	५ से ६	बजे	व्यायाम(योगासन, सूर्य नमस्कार व घूमना)
	७	,,	स्नान
	१०	,,	भोजन
शाम	५	,,	स्नान
	६	,,	भोजन
	७	,,	प्रार्थना और स्वाध्ययन
	९	,,	सोना

नोट :— भोजन का समय अपने-अपने वृत्ति के अनुसार बदल सकते हैं।

स्वास्थ्य रक्षा के पंचतन्त्र
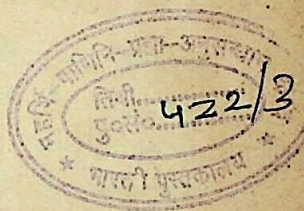
लेखक

डॉ. बी. वेंकटराव

अनुवादिका

डॉ. बी. विजयलक्ष्मी

प्रकृति प्रकाशन

प्राकृतिक चिकित्सालय

बेगमपेट, हैदराबाद (आं. प्र.)

☎ 33786

आमुख

जनता का अज्ञान, औषधिवादियों का आक्रमण, और सरकार की उदासीनता, तथा कहीं-कहीं तो उपरोक्त विविध शक्तियों द्वारा प्राप्त होनेवाला व्यक्तिगत, सामूहिक अथवा दोनों प्रकार का संघटित विरोध, इन और ऐसे ही अनेकविध असुविधाओं के बावजूद भी गत पच्चीस वर्षों में प्राकृतिक चिकित्सा ने इस देश में जो प्रगति एवं लोकप्रियता प्राप्त की है वह उसके उज्वल भविष्य का ही द्योतक है।

आहार शुद्धि द्वारा विचार शुद्धि, विचार शुद्धि द्वारा जीवन शुद्धि, और जीवन शुद्धि द्वारा समाजशुद्धि, ऐसी यह क्रांतिकारी त्रिविध प्रक्रियां है। प्राकृतिक चिकित्सा की, इस लिए अहिंसक समाज के निर्माण में प्राकृतिक चिकित्सा का एक अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने से ही विकृति निर्माण होती है। इस विकृति निवारण के लिए प्रस्तुत पुस्तिका में स्वास्थ्य के कुछ ऐसे सरल नियम बताये हैं जो न सिर्फ प्रकृति के नियमों के अनुकूल हैं, सर्वसुगम और सर्वसुलभ भी है।

बहुत से लोग प्राकृतिक चिकित्सा से इस लिए दूर रहते दिखाई देते हैं कि इस सरल किंतु महान् चिकित्सा के बारे में उन की तरह-तरह की गलतफहमियाँ होती हैं। सबसे बड़ी ग़लतफहमी तो यह है कि प्राकृतिक चिकित्सक भूखे मार देता है। विद्वान लेखक ने इसीलिए सबसे पहले रोग के मूल-कारण आहार

विहार की ही चर्चा की है। आहार विहार के गुण दोषों की चर्चा करते हुए अजीर्ण, उसका कारण, उसका लक्षण, निराकरण के उपाय, तथा उनके पृथ्वी, वायु, तेज आदि पंचतत्वों का स्थान बना कर व्यायाम, उपवास और उपासनादि साधना का महत्त्व समझते हुए उसके कल्याणकारी परिणामों का दर्शन भी करा दिया है जो इतना सूत्रमय और सहजगम्य है कि पढ़नेवाले का मन सहज ही संस्कार ग्रहण करते जाता है। फलतः केवल भय के कारण प्रकृतिमाता के प्रांगण में प्रवेश करनेंवाला साधक भी इन सरल नियमों की क्षमता को पहचान कर, आवश्यकता पड़ने पर अपने आप को उपवास के प्रयोग के लिए भी सहज भाव से दीक्षित एवं तैयार पाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में एक और ग़लतफहमी यह है कि यह चिकित्सा बहुत दीर्घकालीन और महंगी होती है तथा फलहार की अनिवार्यता के कारण सर्व सुलभ नहीं हो सकती।

इस पुस्तक को पढ़ते-पढ़ते ही सहज ध्यान में आता है कि यह भ्रम भी निराधार है। जो चिकित्सा हमें अपने स्थायी स्वास्थ्यों की कुंजी सौंपती हो और विकृतिनिवारण का स्वावलंबी तथा सरल मार्ग दिखाती हो वह कितनी ही दीर्घकालीन हो तो भी अन्त में वही अल्पकालीन सिद्ध होती है। एक रोग को दूर करनें का आभास दिला कर फ़ौरन दूसरा रोग निर्माण करने का सिलसिला सतत जारी रखनेवाली औषधियाँ मनुष्य को एक ऐंसे चक्रव्यूह में फँसा देती हैं कि फिर उसमें से मुक्ति पाना भी दुष्वार हो जाता है। महंगायी का आरोप भी इस लिए ठीक नहीं है

कि इस देश में हवा, पानी, सूरज की रोशनी, और आकाश अभी दुर्लभ नहीं हुए हैं। इनकी खरीदी बिक्री न आज हो रही है और न भविष्य में ऐसी संभावना प्रतीत होती है। मिट्टी दाता ज़मीन पर कुछ लोगों का स्वामित्व होने के कारण मिट्टी को सहज प्राप्त करने में कुछ कठिनाई का अनुभव कहीं किसी को होने की एक असंभव कल्पना की जा सकती है। किंतु अब तो संत विनोबा ने हवा और पानी की तरह जमीन को बहाना भी शुरू कर दिया है। फलतः जमीन क्या सभी प्रकार की स्वामित्व-भावना निर्मूल होती जा रही है। इस लिए मिट्टी के लिए किसी को मोहताज होना पड़ेगा ऐसा भ्रम हमें अपने दिलों से निकाल देना चाहिए।

अब केवल फलाहार आदि का प्रश्न रह जाता है जिसके बारे में लेखक महोदय ने बड़ा साहस भरा किंतु अनुभव सिद्ध सुझाव पेश किया है जिसमें अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार फलरस से लेकर तरकारी के रसों का या चांवल के माँड, पानी तक का प्रयोग करने की सुविधा उपलब्ध कर दी है। इस चिकित्सा के देशव्यापी प्रयोग के लिए ऐसे क्रांतिकारी सुझाव का सार्वभौम स्वागत होगा इस में संदेह नहीं। इस चिकित्सा के विकास-क्रम के अध्ययन करने वाले के ध्यान में यह बात सहज आ सकती है कि यह सुझाव एक ऐतिहासिक आवश्यकता है। अभी गत महायुद्ध के जमाने में जब इंग्लैंड में फलों का मिलना दुष्वार होता दिखाई देने लगा, तो वहाँ के प्राकृतिक चिकित्सकों ने इस चिकित्सा का प्रयोग करने वालों को गाजर, मूली, आलू तथा हरी तरकारियों का रस या मट्ठा या अंकुरित धान्य आदि में से जो वस्तु

या वस्तुएँ सहज उपलब्ध हो सके उनका उपयोग करने की सलाह दी।

यह पुस्तिका डॉ. वेंकटराव और उनकी सहधर्मिणी डॉ. विजया बहन दोनों के संयुग-परिश्रम की फलश्रुती है दोनो निष्ठावान् साधक हैं। विद्यार्थी जीवन से ही दोनों का झुकाव इसी चिकित्सा की ओर रहा। परिवार द्वारा हर प्रकार से दबाव आने पर भी उन्होंने अन्य मार्ग नहीं स्वीकारा साधना के इस पथ पर क़दम बढ़ाते हुए उन्हें अपने जीवन में तथा सेवा के क्षेत्र में अनेंक प्रसंगों पर कड़ी कसौटी देनी पड़ी है। परन्तु अनुभवजन्य ज्ञानयुक्त निष्टा के कारण उनकी साधना उनके लिए ही नहीं उनके संपर्क में आनेवालों के लिए भी कल्याणकारी सिद्ध हो रही है। यह छोटी-सी नियमावली उनके अनुभव और चिंतन का सार है और इसीलिए इतनी सूत्र रूप हो पायी है।

इस नियमावली में आकाश सेवन, और उपासना का भी ज़िक्र है। आकाश सेवन से होने वाले लाभ की ओर अभी प्राकृ-तिक चिकित्सकों का कम ध्यान गया है। विनोबाने इस पर बहुत ज़ोर दिया है। आकाश सेवन से शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के विकास के लिए बहुत पोषण मिलता है। उपनिषदों में तो "खं-ब्रम्ह" कह कर आकाश का गौरव किया गया है। पुस्तिका में उपासना का विधान वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। आहार की तरह उपासना भी शरीर स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है। क्यों कि शरीर स्वास्थ्य पर स्वस्थ मन का बहुत असर होता है। और उपासना से मन तथा आत्मा को आवश्यक सभी पोषक तत्व

मिल जाते हैं। ऐसा अनुभव है। भौतिक जगत में जैसे बीज फल व्याप्त होती है वैसे वह भावना भी जगत में चरितार्थ होती है। ऐसा अनुभवी लोगों का कथन है।

उपरोक्त दोनों सुझावों को सम्मिलित करके इस पुस्तिका ने तो स्वयं विनोबाज़ी का ही आशिर्वाद प्राप्त कर लिया है। फिर मेरे लिए अधिक और क्या करने का रह जाता है। इस भावना चिंतन के कि....।

सर्वेऽत्र सुखिनः संतु, सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्‌दुःखमाप्नुयात्।।

दामोदरदास मूँदडा
प्रायवेट सेक्रेटरी,
(विनोबा भावे)

परिचय

हर्ष है कि इस पुस्तक का यह चतुर्थ संस्करण प्रचुरित हो रहा है। यह पुस्तक तेलुगु भाषा का (आरोग्य नियममुलु) का अनुवाद है।

गत १८ वर्षों में यह अनुभव रहा हैं कि चिकित्सा करते समय व चिकित्सा के बाद भी चिकित्सा प्रक्रियाओं में तथा चिकित्सा के बाद प्रतिकूल वातावरण में रहते हुए भी स्वास्थ्य रक्षा कैसे कर सकते हैं ? इसके बारे में अनेक कठिनाइयाँ, व शंकायें लोगों के सामने आती रही हैं। इनको निवृत्त करने के लिये ही यह छोटी सी पुस्तक लिखी गयी है। जिससे हर एक व्यक्ति अपनी शंकाओं को निवृत्त कर अपने स्वास्थ के बारे में स्वावलम्बी बन सकें।

साधारणतः लोग रोगों से उक्ताकर दवाईयों व डॉक्टरों से बेजार होने के बाद निराशा में डूबे हुये अंत में प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में आते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा ही एक मात्र मार्ग है जिससे रोग निर्मूलन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह पद्धति इतनी सरल है कि प्रत्येक व्यक्ति आसानी से समझ कर आचरण में ला सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में लोगों के मन में कुछ शंकायें बैठ गयी हैं, जिसको दूर करना आवश्यक समझता हूँ।

(१) "प्राकृतिक चिकित्सा में हर रोगी को उपवास

करवाकर भूखा मार दिया जाता है । "

रोगी की शारीरिक व मानसिक स्थिति, रोग की तीव्रता इन सब अंशों को ध्यान में रखते हुये आवश्यक हो तो ही उपवास करवाया जाता है ।

(२) "प्राकृतिक चिकित्सा में रोग को ठीक होने के लिये काफी समय लगता है ।"

रोग के होते ही यदि रोगी प्राकृतिक चिकित्सा करें तो समय अधिक नहीं लगता, लेकिन बाहर सब चिकित्सा विधान करने के बाद अंत में प्राकृतिक चिकित्सा के लिये आते हैं । तब तक रोग भी पुराना हो जाता है, और शरीर में जीवन शक्ति भी कम होती है इसलिये रोग के ठीक होने में समय लगता है ।

(३) "प्राकृतिक चिकित्सा बहुत महंगी है और यह चिकित्सा पद्धति गरीब के पहुँच में नहीं है" प्राकृतिक चिकित्सा देश, काल, पात्र को दृष्टि में रखते हुये जिस प्रान्त में जो-जो पदार्थ मिलते हैं उसी से चिकित्सा की जा सकती है । पंच महातत्व (मिट्टी, पानी, सूर्यरश्मी, वायु, तथा आकाश) प्रधान प्राकृतिक चिकित्सा कभी महंगी नहीं हो सकती है ।

(४) प्राकृतिक चिकित्सा जब तक करते रहते हैं तब तक स्वास्थ्य ठीक रहता है, छोड़ने पर वापस रोग हो जाता है ।

यह गलत फहमी है । चिकित्साकाल में पथ्य व चिकित्सा अनिवार्य हो जाता है । चिकित्साकाल के बाद केवल आरोग्य रक्षा के पंचतंत्र का पालन करें तो रोग से हमेशा बच सकते हैं ।

स्वास्थ्य पाना, और खोना, रोगी के हाथ में है । जिस मार्ग

पर चल कर उन्हें खोया हुआ स्वास्थ्य मिला है, उसी मार्ग को लिपिबद्ध कर पाठकों के सामने रखने की उत्कण्ठा काफी दिनों से बनी हुई थी, उसी के फलस्वरूप यह छोटी सी पुस्तक आपके सामने है।

हमारा मुख्य उद्देश्य यही है कि जनता स्वास्थ्य रक्षा के पंच तंत्र का पालन कर हमेशा रोगों से बचे और स्वास्थ्य के बारे में स्वावलम्बी बन जायें।

स्वास्थ्य के सरल नियम

आहार

१. आहार विज्ञान के बारे में अनुभव न होने के कारण ही रोग होता है। इसलिये इस विषय में अनुभव और जानकारी रखने वालों की सलाह के अनुसार कौनसा, कितना, किस समय और किस प्रकार का आहार लेना चाहिये, यह मालूम कर लेना बहुत जरूरी है।

२. मानव शरीर को स्वस्थ रखनेवाले आहार दो प्रकार के हैं :–

(अ) अपक्व आहार—(Uncooked Diet)

इसी को अमृतान्न या सजीव आहार भी कहते हैं। इसमें फल, तरकारियाँ, दूध कन्दमूल आदि आते हैं।

(आ) पक्व आहार—(Cooked Diet)

चाँवल, रोटी दाल, उबली हुई तरकारियाँ आदि।

नोटः– नमक, मिर्च, मसाले आदि उत्तेजक पदार्थों का उपयोग कदापि नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये ही रोगों का कारण बनते हैं।

३. खाद्य पदार्थों को भाप ही से सिजाना चाहिए।

४. आहार के नियत समय के बीच में कोई चीज नहीं खाना चाहिये।

५. भोजन खूब चबा कर करना चाहिये। आहार को बिलकुल नरम बना कर खाना चाहिये। (Drink you solids and eat your liquids)

६. आहार लेने से पूर्व तथा पीछे पानी से चार-चार बार कुल्ले करके मुँह को स्वच्छ करना चाहिये।

७. भोजन खुली और शुद्ध हवा में करना चाहिये।

८. आहार भूख का तीन चौथाई ही लेना, और एक चौथाई हिस्सा खाली छोड़ना। पेटभर खाना हानिकारक है।

९. भोजन के साथ पानी नहीं पीना चाहिये। आहार लेने के समय से कम-से-कम एक घंटा बाद ही पानी पिया जाय। केवल ठंड़े जल का ही प्रयोग करना उचित है; सोड़ा, लेमन, आदि ठंड़े पेयों से बचना चाहिये।

१०. खूब कडाके की भूक लगने पर ही आहार लेना चाहिए भोजन के आधे घंटे तक कुछ पढ़ना-लिखना उचित नहीं है।

११. आहार के बाद उपचार बंधे समय ही करना चाहिये। भोजन के तीन घंटे बाद तक टब बाथ, धूप नाहन, एनिमा व्यायाम, स्नान तथा उपचार नहीं करना चाहिये। उपचारों के आधे घंटे बाद ही कुछ खाना हो तो खा सकते हैं।

१२. चाय, काफी, तंबाकू, पान और मादक द्रव्यों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिय।

१३. क्रोध, पीड़ा और चिंता के समय भोजन करना ठीक नहीं, आनन्दपूर्वक या शांति से आहार लेना ही उचित है।

१४. आहार केवल दो ही बार खाना चाहिये। आयुर्वेद में भी यह साफ बताया है कि=

एकभुक्तम् महायोगी
द्विभुक्तम् महाभोगी
त्रिभुक्तम् माहारोगी

इसका मतलब है एक बार खाने वाले योगी है, भोगी यानि

संसारी को दोही बार खाना चाहिये और जो तीन बार खाता है वह रोगी है।

१५. देश, काल, पात्र, आयु और वृत्ति के अनुसार जहाँ-जहाँ जो-जो फल और तरकारी मिलते हैं, वह अपनी पाचन शक्ति के अनुसार खा सकते हैं।

— सामान्य नियम :—

१. जब कभी मल-मुत्र विसर्जन करने की इच्छा या शंका मात्रा भी उत्पन्न हो तो उसी समय विसर्जन कर लेना चाहिए। किसी कारण से भी रोकना नहीं। निर्देशित प्रदेश में ही मल-मूत्र विसर्जन करें और मिट्टी डाल कर ढक दें। जहाँ चाहे वहाँ टट्टी पेशाब न करें और न थूकें। मल-मूत्र और थूक आदि को खुला न छोड़ें अन्यथा मक्खी, मच्छर, कीट, पतंग इन्हें ला कर हमारे खाने-पीने की चीजों से मिला देंगे, जिससे हमारा स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। खुले छोड़े हुये मल-मूत्र और थूक आदि से उनकी दुर्गंध फैलेगी और हवा में मिल कर हवा को बिगाड़ देगी तथा हमारी बीमारी का कारण बनेगी। कूड़ा करकट भी निर्देशित स्थान पर ही फेंका जाय।

२. अपने निवास के लिए भी ऐसा स्थान चुनना चाहिए जो सदा प्रकाश और खुली तथा साफ़ हवा से भरपूर हो।

३. रात में ठीक समय पर सो जावें बेसमय न सोवें, ताकि निद्रा में बाधा न पड़े।

४. जिस समय रोगी गहरी नींद में सो रहा हो, उस समय किसी प्रकार की चिकित्सा के लिए भी रोगी को न जगावें।

५. छींक, खाँसी, अपानवायु आदि को न रोकें।

६. जिस कमरे में मिट्टी के तेल का दिया रखते हो, उसके किवाड़ और खिड़कियाँ बंद करके न सोवें। साधारणतया भी इन्हें कुछ खुला रख कर ही सोना चाहिए।

७. मकान के बाहर खुली जगह में सोना ही श्रेयस्कर है। कभी चित्त न सोवें दाया करवट तथा पट पर सोना ही उचित है। सिर के नीचे ज़्यादा ऊँचा तकिया न रखें तथा ओढ़ने के कपड़ों से मुँह को न ढँकें।

८. प्रतिदिन उष:काल में ही उठ कर शौचादि से निवृत्त होना चाहिए और दातून कर लेना चाहिए। दातून अंगुली जितना मोटा हो जो कड़वा अथवा कसेला हो और चबाने पर नरम हो जाय, इसके लिए बबूल, नीम और वट उत्तम हैं। हर एक दांत को अच्छी तरह साफ़कर लेना चाहिए। जीभ साफ़ करने के लिए दंत काष्ट दस इंच से कम न हो। मुंह धोते समय अंगुलियाँ कंठ के अंदर तक डाल कर साफ़ करें, जिससे श्लेष्मादि बाहर निकल जाय।

सप्ताह में एक बार अभ्यंगन स्नान (Oil Bath) अवश्य करना चाहिए तथा सप्ताह में एक बार नाखुन कटवाने चाहिए।

९. बढ़िया स्वास्थ्य के लिए हफ़्ते में एक दिन केवल पानी पर उपवास करना चाहिए।

१०. दिन में एक बार ३० मिनिट धूप नहान करना चाहिए।

११. उपवास के और अपक्व आहार लेने के काल में मन बहुत उत्तेजित रहता है और क्रोध आदि के विकार भी खूब उठते रहते हैं, जिन से खून खराब हो जाता है। इसलिए इस

काल में शान्त चित्त रहने की कोशिश करनी चाहिए। उपवास-काल में उठते वैठते समय चक्कर आने लगता है, इस से घवड़ाना नहीं चाहिए।

१२. रोगियों को स्वयं खाना पकाना या परोसना नहीं चाहिए।

१३. चिकित्सा काल में ब्रह्मचर्य का पालन करना नितान्त आवश्यक है।

— अजीर्ण के लक्षण :—

मुँह से बदबू आना ज्याद थूक या पानी निकलना, दातों में मैल जम जाना, ज़बान का सफ़ेद रहना, मुँह में चिकनाहट रहना, मुँह का स्वाद बिगड़ जाना, कण्ठ में श्लेष्म की गोळी-सी बन जाना, छाती पर बोझ-सा लगना, छाती में जलन रहना, खट्टी डकारें आना, पेट फूल जाना या फूला-सा मालूम होना, अपान-वायु निकलना, मूत्रकम मात्रा में कई बार आना, मल-त्याग के बाद भी शंका रहना कि अभी पाखाना साफ़ नहीं हुआ, रात्रि के समय नींद अच्छी तरह से न आना, स्वप्न हो जाना या नींद में कुछ वोल पड़ना, आँखों में मैल जमते रहना, सुबह नींद से जागने के बाद आलस या सुस्ती मालूम होना, निरुत्साह-सा रहना, सात्विक आहार की इच्छा न रहना और नमकीन मिर्च तथा मसालों वाली खट्टी चीजें खाने की इच्छा होना, कृत्रिम आहार के लिये दिल का ललचाना, ये अजीर्ण के लक्षण हैं। जब उपर्युक्त लक्षण दिखाई देने लगें तो समझना चाहिए कि जो आहार लिया जा रहा है, वह ठीक नहीं पच रहा है तथा पेट में कुछ गड़बड़ी सी है और अजीर्ण होने को है।

अजीर्ण के इन लक्षणों का निवारण करने के लिए आहार कम करके ऐसी चीजें खाई जावें जो जल्दी पच जावें। इस पर भी आवश्यक हो तो, उपवास कर लेना चाहिए, यदि ऐसा नहीं किया गया तो निम्न लिखित बीमारियाँ पैदा होंगी।

बुख़ार सिरदर्द, सर्दी, जुकाम, पेटदर्द, खाँसी, दस्त और दस्तों के साथ लेई जैसी चीज का या ख़ून का निकल आना आदि विकार पैदा होते हैं इन से मुक्त होने के लिए खाना पूर्ण-तया छोड़ कर उपवास कर लेना चाहिए। यह न हो सके तो, भूख के अनुसार बिलकुल हल्का आहार लेना चाहिए। लेकिन उपवास करना ही इनकी अचूक चिकित्सा है। ऐसा करते हुए भी टब स्नान भी जारी रखना चाहिए। बाद में हल्का आहार लेना आवश्यक है बुख़ार और सर्दी ज़ुकाम में पूरा उपवास करके शक्ति के अनुसार एक या दो बार भाप नहान करना चाहिए। जब दस्तों के साथ लेई जैसी चीज़ निकलती हो, तो नींबू का पानी न पीवें, बल्कि नारियल का पानी अथवा पतला छाँछ पीकर उपवास करें। इस विकार में उपवास के साथ रोजाना दो या तीन बार ठंडा पानी का उपयोग, एनिमा करना लाभकर होगा। कम से कम दो सेर पानी पीना आवश्यक है।

आहार बदलने का विधान

अपक्व आहार लेते हुए अचानक पक्व आहार लेने से हाथ पैर और मुख का फूल जाना, सुस्ती-सी आना, प्यास अधिक–लगना, क्रमशः सारा शरीर सूज जाना आदि लक्षण पैदा हो जाते हैं। इससे यह न समझ बैठें कि सूजन की बीमारी हो गई है या कोई बड़ा रोग होने वाला है। तब यह समझ कर कि पथ्य न

रखने से ऐसा होता है, तुरन्त ही अपनी भूल को सुधार लेना चाहिए, अर्थात आहार छोड़ कर उपवास करते हुए फल आदि हल्की चीज़ खानी चाहिए। इससे थोड़े ही दिनों में वे लक्षण कम हो जायेंगे। नमक, मिर्च, खटाई और चटनी आदि से मिश्रित पदार्थ खाने से मल-मूत्र विसर्जन के द्वारा जलने लगेंगे। इसलिए एनिमा लेते हुए फल आदि हल्के पदार्थ ही खाना चाहिए।

कच्चा आहार लेते हुए उसे जब पके आहार में बदलना होता है, तब बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। शुरू में दिन में सिर्फ एक बार ही पका हुवा साग, बाद में दलिया या चावल का मांड अथवा रोटी के साथ पकी सब्जी लेनी चाहिए। मगर सब्जी की मात्रा अधिक हो और लप्सी या रोटी की कम। पहले इस तरह लप्सी या दलिया से शुरू करना, फिर रोटी और इसके बाद भात खा सकते हैं। इस तरह दो सप्ताह तक दिन में एक ही बार खाना चाहिये। ऐसा खाने में यदि भूख पूरी नहीं मिटती हो, तो उसके लिये मीठी नारंगी, संत्रा या मोसंबी जैसा फल खाना ठीक होगा, और दूसरी बार के लिये कच्ची सब्जी और रसीले फल खाये जायँ। हर आहार में नमक, खटाई आदि चीज़े सर्वथा निषिद्ध हैं। लोग आहार में संयम नहीं कर सकते और रद्दी चीज़ें खाना चाहते हैं, ये पहले नमक से शुरू करें और तब पीछे मिर्च मसाले का उपयोग करें।

आकाश, वायु, तेज, व व्यायाम

हमारा यह शरीर पंच भौतिक तत्वों से बना है। यह सब अच्छी तरह जानते हैं कि उन्हीं के सहारे यह मानव शरीर बढ़ता भी है, ज्यों-ज्यों मानव सभ्यता बढ़ती गयी त्यों-त्यों हम इन से

दूर होते गये हैं। हमारा रहन-सहन दिन-दिन अप्राकृतिक और कृत्रिम बनता जा रहा है।

किसान लोग जो बहुत कम कपड़े पहन कर दिन भर खुली हवा और धूप में काम करते हैं, कैसे स्वस्थ, निरोग और सुख से जीवन बिता रहे हैं! इसी तरह पशु-पक्षी जो प्रकृति के करीब जीते हैं, सदा स्वस्थ और प्रसन्न रहते हैं। हमें भी चाहिए कि हम भी उनकी तरह हवा और धूप से जीवन-शक्ति प्राप्त कर आनन्द से जीवन बिताने का प्रयत्न करें।

इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार कम कपड़े पहन कर सुबह व शाम धूप में फिरना आवश्यक है। चलते समय छाती को हमेशा आगे तान कर योद्धा की तरह चलना चाहिए। व्यायाम हमेशा खुली जगह में करनी चाहिए। योगासन, सूर्य नमस्कार आदि व्यायाम को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार करें।

खुली हवा में व्यायाम करने से शरीर को काफ़ी मात्रा में प्राणवायु मिल जाती है, जिससे शरीर के अन्दर जो गंदगी रहती है वह पसीना और मलमूत्र के द्वारा तेजी से बाहर निकल जाती है। शरीर में बल तथा चैतन्य का संचार होता है। भूख बढ़ती है और शरीर गठीला बनता है। शक्ति से बढ़कर व्यायाम करना हानिकारक है। चर्खा कातने से दृष्टि केन्द्रीकृत होती है, साथ ही मन भी एकाग्र होता है। इससे सहन-शीलता बढ़ती है। चर्खा द्वारा आरोग्य साधना सावधानी से करने का बल मिलता है। रोग लक्षण का मनन करने की बुरी आदत छुट जाती है।

प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व यथा संभव कम से कम वस्त्र पहन कर आकाश के नीचे यथाशक्ति आधे या एक घंटे तक घूमना चाहिए। आकाश तत्व से शरीर, शक्ति ग्रहण कर स्वस्थ बनेगा।

टब स्नान के नियम

१. टब स्नान का जल जहाँ तक हो सके ठंडा होना चाहिए और उस पर सूर्य किरण न पड़ें।

२. टब स्नान के पात्र को प्रति सप्ताह खूब साफ करके धूप में सुखा लेना चाहिये।

३. जहाँ टब स्नान किया जाता है, वहाँ किसी प्रकार की दुर्गन्ध न हो।

४. टब स्नान करने के पूर्व टब में पानी कम से कम दो घंटे पूर्व भर कर रखना चाहिए। पानी निर्मल हो तथा खारा न हो। टब स्नान करने के समय पैरों में जूते पहन लिये जाँय।

५. टब स्नान के पश्चात शरीर में गर्मी पैदा करने के लिये कंबल ओढ़ कर लेटे रहें, या कोई कसरत करें या टहलने जावें।

६. स्नान के पहले और पीछे आधे घंटे तक गीली जगहों में जाना और टहलना नहीं चाहिये।

७. टब स्नान करने से मासिक स्त्राव रुक सकता है, परंतु उससे घबराना नहीं। शरीर निरोग होने पर मासिक नियमित हो जायगा।

८. मासिक-धर्म में शुरू के चार दिन टब स्नान, कोई व्यायाम, बाष्प स्नान और आतप स्नान तथा पट्टियों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिये। जरूरत पड़े तो एनिमा ले सकती है। पूर्ण स्नान करना ज़रूरी हैं।

९.टब स्नान के साथ दवा का प्रयोग बिलकुल नहीं करना चाहिये। ये एक दूसरे के विरुद्ध हैं।

१०. एक ही जल से दुबारा टब स्नान नही करना चाहिये। हर स्नान के लिये ताजा जल ज़रूरी है।

११. उपरोक्त स्नान करते समय कोई कामेच्छा की भावना नहीं होनी चाहिये। गर्भवती स्त्रियाँ गर्भ के चार मास तक ही कटि स्नान कर सकती है। आखिर तक मेहन स्नान कर सकती हैं।

१२. गर्भवती स्त्रियाँ व कमज़ोर तथा दुर्बल रोगियों को कड़ा भाप स्नान अथवा धूप स्नान नहीं करना चाहिये।

१३. भाप स्नान, धूप स्नान इत्यादि करने के बाद ठंड़े जल से पूर्ण स्नान करना आवश्यक है।

१४. दुर्बल रोगियों को जो बिछोने से उठ नहीं सकते, यदि टब स्नान करवाना हो तो बिस्तर पर ही एनिमा नली की सहायता से पेड़ू पर पानी डाल कर कपड़े से धीरे-धीरे मलना चाहिये।

स्वास्थ्य——संकट या उभार

चिकित्सा काल में शरीर पर फुन्सियों का निकलना, चर्म रोगों का प्रबल होना, बुखार, खांसी, जुखाम, दस्त, खून या आंव के दस्त, उल्टी होना स्वास्थ्य संकट कहलाता है। दवा से दबी हुई पुराने बीमारी का लक्षण भी दिखता है। इन उभाड़ों से घबराना नहीं चाहिये। प्राकृतिक चिकित्सा के कारण शरीर की जीवन शक्ति बढ़ती है। और शरीर शुद्ध होता है। वह अपने अन्दर के विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने की कोशिश करता है। फलत: विषैली दवाओं से दबाये गये बरोसों के रोग लक्षण बाहर निकल आते हैं, जिससे शरीर की सफ़ाई होती है। इसलिये इनको लाभकारी समझ कर संतुष्ट होना चाहिये। इस

काल में नींबू के पानी से उपवास करना और इसके बाद फल, रस तथा धीरे-धीरे हल्के आहार पर पहुँचना चाहिये। इससे ये उभाड़ खुदबखुद समाप्त हो जायेंगे और शरीर का शोधन हो जायगा।

उभाड़ काल में टब स्नान, भाप स्नान, मिट्टी की पट्टियाँ-एनिमा आदि का उपयोग आवश्यकता के अनुसार ज़रूर करना चाहिये। इस काल में उपवास तथा फलाहार के कारण कुछ रोगी बहुत दुर्बल हो जाते हैं, क्योंकि विजातीय द्रव्य बाहर निकलने लगते हैं और शरीर की सफ़ाई होती रहती है। इसलिये रोगी को घबराना नहीं चाहिये। थोड़े ही दिनों में उनका शारीरिक बल बढ़ता जायेगा और वह निरोग तथा स्वस्थ हो जायगा।

आत्म प्रबोध

आप को पहले जो बीमारी थी, उससे आप बिना किसी प्रकार की दवा तथा बिना इंजेक्शन या आपरेशन के इस प्राकृतिक चिकित्सा के सूत्रों के अनुसार, आहार, विहार आदि के अदल-बदल से मुक्त हो गये हैं, या हो रहे हैं, तो आप को सोचना चाहिए, कि इसके बारे में आपने क्या ग्रहण किया? या क्या अनुभव किया? और अगले जीवन में किस प्रकार लाभ उठाया जाय?

आहार विहार की गलतियों के कारण ही बीमारियाँ पैदा हो गई थीं और इनको दूर करने के लिए कितनी ही और औषधियाँ इंजेक्शन लेने पड़े, फिर भी बीमारियों का अन्त नहीं हुआ बल्कि व क्रमशः बढ़ती ही गई है, लेकिन अब जो इस प्राकृतिक चिकित्सा सूत्रों की प्रणाली के अनुसार चिकित्सा करने से तथा अपने पूर्व के आहार विहार आदि दैनिक क्रम को पूर्णतया

बदलने से ही आप नीरोग हो गये हैं, तो आपको चाहिए कि इन सूत्रों को न भूलते हुए इन्हें सदा आचरण में लाते रहें और इन को जीवन भर चलायें तब आपका जीवन स्वास्थ और सुखी रह सकेगा। आपका जीवन कृतार्थ होगा।

यदि आप यह सोचने लगजाँय कि इन सूत्रों के चलने में नियमों का पालन करना होगा, तथा आहार विहार के संयम और नियम के झंझट में पड़ना होगा, और इससे जी ऊब आयेगा, तो आप आरोग्य से हाथ धो बैठेंगे। और सदा रोगों से ग्रस्त रहेंगे, परिणाम स्वरूप आपको दुःखी जीवन बिताना पड़ेगा। यदि हम अपने जीवन के नित्यक्रम यानी खाना-पीना, मल-मूत्र विसर्जन, नींद, श्वासोच्छ्वास आदि छोड़ बैठें, तो क्या हम जीवित रह सकते हैं? इसी प्रकार प्राकृतिक जीवन-सूत्रों के आचरण को छोड़ने से रोगमुक्त और सुखी कदापि नहीं रह सकते। तब आप ही इसका निर्णय कर सकते हैं कि इनको अन्त तक चलाया जाय? अथवा बीच में ही छोड़ दिया जाय?

निम्न लिखित श्लोक ध्यान देने योग्य हैं—

(१) आहाराचारचेष्टासु सुखार्थी प्रेत्यचेह च।
परं प्रयत्नमातिष्टेत् बुद्धिमान् हितसेवने॥

अर्थः— बुद्धिमान व्यक्ति सुख व शांति से जीवन बिताने के लिये जीवन भर आहार-विहार नियम पालन करता है।

(२) अनात्मवन्तः पशुवत् भुजंन्ति ये अप्रमाणतः।
रोगानिकस्य ते मूलं अजीर्णं प्राप्नुवन्तिः॥

अर्थः— आनात्मवान पशु की तरह जब चाहे तब बेज़रूर आवश्यकता से अधिक खाता है और अजीर्ण को प्राप्त करता है जो सब रोगों का मूल कारण है।

हर यंत्र को साफ़ करने के लिये सप्ताह में एक दिन तो विश्राम दिया जाता है, पर इस मानव देह यंत्र को हम सदा चलाते रहते हैं, इसको ठीक तथा कार्यक्षम रखने के लिए हफ़्ते में एक दिन खाना छोड़ कर उपवास करके पूर्ण विश्राम देना चाहिये ।

उपासना (प्रार्थना)

वर्तमान काल में भौतिकवाद की प्रबलता के कारण शरीरोपासना की प्रधानता बढने से रोगों की संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है, इसलिए हम शरीर को ज़्यादा प्रधानता न देकर घोडा, गाडी, मोटर इत्यादि की तरह इसको भी साधन समझ कर काम लेने के लिए ही पोषण करना चाहिए। क्रमशः शरीर भाव को घटा कर आत्म भाव को जागृत करने के लिए उपासना करना आवश्यक है। उपासना के लिए प्रातः और सायं दोनों समय नियमित रूप से प्रार्थना करने का आदी होना अच्छा है। दोनों समय प्रार्थना करते हुए आत्मज्ञान प्राप्त कर मानव परमात्मा में विलीन होना ही मानव जीवन का परमोत्कर्ष है।

उपवास की महत्ता

यह कहा जाता है कि प्राकृतिक चिकित्सामें रोगी को उपवास करा कर (भूखे रख कर) मार डाला जाता है यह केवल अज्ञान है। इसलिये प्राकृतिक चिकित्सकों को चाहिये कि वे उपवास के बारे में लोगों की जो ग़लत धारणायें हैं, इनको दूर करें और उपवास के लाभ तथा महत्त्व का स्पष्ट रूप उनके सामने रखें।

वेदों, उपनिषदों और पुराणों ने उपवास के विषय में बहुत

कुछ कहा है। प्रत्येक एकादशी को, अमावास्या को और युद्ध पर जानें से पहले, विवाह काल में तथा व्रतों में उपवास रखने का आदेश दिया है।

हमारा देश वहुत दिनों से आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करता आ रहा है, लेकिन हम पाश्चात्यों के कुसंस्कारों के और विज्ञान तथा आज-कल के भौतिक-युग के फेर में पड़ कर शुद्ध जीवन को भूल गये हैं और पवित्र आचार-विचारों की हंसी उड़ाने लगे हैं। खाने पीने में संयम बरतना तथा उपवास आदि व्रत रखना बड़े बूढ़ों का फ़ालतू काम मानने लगे हैं। इस प्रकार उपवास के महत्त्व को भूल कर बग़ैर सोचे समझे अनाप शनाप खाने-पीने के पीछे पड़ गये हैं। उपवास का महत्त्व इतना है कि इसके सहारे हम अपने शरीर और मन का शोधन कर के ऐहिक तथा पारलौकिक जीवन को यशस्वी कर सकते हैं। मातृदेवी और वेदों से बढ़ कर परतत्त्व के बारे में कथन करने वाले कोई नहीं हैं, तथा उपवास से बढ़ कर दुनियाँ में कोई तप नहीं है। इसलिए उपवास को हम साधारण चिकित्सा न समझें, बल्कि आरोग्य लाभ तथा आत्मिक शांति का साधन जान कर इस के महत्त्व को ठीक ठीक समझ लेवें।

उपवास दीर्घ काल तक तथा थोड़े दिनों के लिए भी किये जाते हैं।

१. दुर्बल तथा शुष्क शरीर वाले, यक्ष्म के रोगी, पूर्ण गर्भवती स्त्रियाँ और कमज़ोर बूढ़े व्यक्तियों को लम्बे उपवास नहीं करने चाहिए।

२. मोटे और चरबी वाले व्यक्ति, तीव्र तथा जीर्ण रोगी और बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, स्थिति के अनुसार, अनुभवी व्यक्ति की देखरेख में उपवास कर सकते हैं।

३. उपवास के लिए उत्तम समय सर्दियों का है, मध्यम समय वर्षाकाल होगा, गर्मियों में भी आवश्यकता के अनुसार उपवास करना हानिकारक न होगा।

४. उपवास करने वालों को रसोई घर में या भोजन करने के स्थान पर न जाना चाहिए। उपवास करने वालों के सामने अन्न और खाद्य पदार्थों की चर्चा न करें। उपवास करने वाले रोगी को, उपवास काल में खाद्य पदार्थों के बारे में सोचते न रह कर मन को उत्तम विचारों और सद्ग्रन्थों के पठन से संयम तथा शाँत रखने का प्रयत्न करें।

५. उपवास काल में कुछ कष्ट होते हैं, क्योंकि शरीर संचित विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में लग जाती हैं, जिससे शरीर का शोधन होता है और रोग दूर होने लगते हैं। इसलिए थोड़ी तकलीफ़ सह कर अगले लाभ के लिए हमें आनंदपूर्वक धैर्य तथा शांति से समय बिताना चाहिए।

६. उपवास से वजन घटता है और कुछ दुर्बलता सी प्रतीत होती है, पर मानसिक उत्साह बढ़ता है और शरीर में स्फूर्ति आ जाती है। कभी कभी कुछ समय के लिए रोगी की मानसिक शक्ति शिथिल हो सकती है।

उपवास से शरीर में होने वाले स्थित्यंतर

मानव शरीर रासायनिक परिशोधनालय से अधिक महत्त्वपूर्ण है। अन्न पाचन में लगने वाली शक्तियाँ उपवास काल में

शरीर शोधन में लग जाती हैं। सप्त धातुओं में जो विकार होता है वह वे बाहर निकलते हैं और शरीर का शोधन होने लगता है, जिस प्रकार किसी यन्त्र को तेल देने से वह फिर से सुचारु रूप में काम करने लगता है, उसी प्रकार यह देह यंत्र भी बिलकुल नया बन जाता है और उसमें काँति तथा स्पूर्ति आजाती है।

उपवास काल में होने वाले उभार

अरुचि, मुंह में चिकनाहट, दुर्गन्ध, जीभ पर सफेदी का जम जाना, उबकाइयों का होना, पेट में दर्द होना, बैठ कर उठते समय चक्कर आना, खून और आँव के दस्त होना, डकारें, हिचकियाँ, नाडी की गति में परिवर्तन होना, ये लक्षण उपवास काल में होते हैं। ये लक्षण विकार बहिष्करण के कारण होते हैं। इनसे घबराना नहीं, बल्कि इनको लाभकारी समझना चाहिए।

उपवास काल की चिकित्सा

एनिसा, मिट्टी की पिट्टी, कटिस्नान, भापस्नान, धूपस्नान, मालिश, सारे शरीर का स्नान आदि आवश्यकता के अनुसार लिए जायें, तो उपवास सुगमता से होता है और कष्ट कम हो जाते हैं।

जब उबकाइयाँ होती हों और उल्टी की शंका होती हो तो कुनकुने पानी में नींबू का रस मिला कर या केवल पानी पीकर उल्टी करनी चाहिए, जिस से पेट में जमा आ मल बाहर निकल आता है और आराम मिलता है। जब खून और आँव के दस्त होने लगते हैं, तो नीली बोतल के पानी का उपयोग किया जाय। मिट्टी की पिट्टी भी लाभकर होगा।

उपवास के प्रकार

(१) निर्जल उपवास (बिना पानी का उपवास) :—

बिना पानी का उपवास कष्टदायी और जोखम का होता है। आत्म-शक्ति (आत्मिक बल) रखने वाले व्यक्ति ही इस प्रकार के उपवास को बहुत थोड़े दिनों तक निबाह सकते हैं। इसलिए साधारण व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए।

(२) जलोपवास (जल पी कर) :—

दिनमें कम से कम छः बार पानी पीकर उपवास करना सजल उपवास कहलाता है, यह उपवास कोई भी व्यक्ति बिना किसी कष्ट कर सकता है और दीर्घ काल तक चला सकता है।

(३) रसोपवास (रसीले फलों का रस पीकर):—

नारंगी, नींबू, मोसंबी, अनार, अंगूर आदि मोसमी रसीले फलों का रस उपवास काल में लिया जा सकता है, नींबू का रस शरीर के शोधन में बहुत उपयोगी होता है, इसलिए यह अवश्य लेना चाहिए। दूसरे फलों का रस लेना हो तो केवल तीन चार बार ही लेना ठीक है, यदि जरूरी हो तो बीच में पानी पी सकते हैं।

उपवास की पक्व स्थिति

उपवास काल में होने वाले उभार के लक्षण समाप्त हो जाना, मुंह का स्वाद ठीक हो जाना, जीभ का रंग लाल हो जाना चेहरा निखर आना, शरीर में हल्कापन तथा फूर्ति का अनुभव होना, सात्विक आहार की इच्छा होना, ये लक्षण दिखाई दें तो उपवास की पक्व स्थिति समझ कर नीचे लिखे प्रकार से उपवास समाप्त करना चाहिए।

उपवास की समाप्ति

कोई भी व्यक्ति उपवास चाहे जितने दिन भी कर सकता है, पर इसका समाप्त करना बहुत कठिन है। यदि उपवास की समाप्ति में गलती हो जाय, तो उपवास का सारा लाभ जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि कभी कभी इससे प्राण संकट भी आ सकता है।

उपवास काल की पक्वावस्था में, उपवास काल के अनुसार पहले दिन से सातवें दिन तक फलों का रस लेना जरूरी है। उपवास के बाद कुछ दिन तक कोमल नारियल का पानी लेना बड़ा लाभकारी होगा। उपवास छोड़ने के बाद पानी मिलाये हुए फलों का रस, उसके बाद केवल फल रस और तब फिर चबा चबा कर फल सेवन करना चाहिए। उसके बाद भूख के अनुसार कच्ची तरकारियाँ, केला, नारियल, तथा मट्टा, दूध आदि धीरे धीरे ले सकते हैं। जो व्यक्ति आहार लेना चाहते हैं, वे कच्ची तरकारियों के बाद पक्की तरकारियाँ और दलिया तथा फल रस लेकर धीरे धीरे रोटी भाजी खा सकते हैं। आहार विधि के अनुसार बदल लेवें। जहां फल रस नहीं मिल सकते वहाँ कच्चीतरकारियों के रस का उपयोग कर सकते हैं। जहाँ ये भी न मिले तो वहाँ सूजी की पतली लप्सी या चाँवल के पतले मांड से उपवास तोडना चाहिए।

बढ़िया स्वास्थ्य के लिये हर व्यक्ति को कम से कम सप्ताह में एक दिन उपवास करना आवश्यक है।

चिकित्सा विधि

१. एनीमा:—किसी खाट या ज़मीन पर दाएं करवट लेट

कर एनीमा का डिब्बा लेटने के स्थान से तीन फ़ीट की ऊँचाई पर रहना चाहिए। डिब्बे में क़रीब ढाई सेर गुनगुना सादा पानी लें। नली के द्वारा थोड़ा-सा पानी निकाल कर देख लें कि धारा बराबर है, इस से ट्यूब में जो हवा रहती है वह भी निकल जायेगी, जिसका निकलना ज़रूरी है। नाज़ल पर कुछ चिकनाई लगा कर मलद्वार में रखना चाहिए जिससे पानी मलद्वार से आँत में जायगा। बीच में यदि पेट में दर्द मालूम हो तो थोड़ी देर के लिए पानी रोक लें और डिब्बे की ऊंचाई भी कम करें। फिर पानी जाने दें। पूरा पानी जाने पर पेट के बल सोकर पेट को दबाना चाहिए। कुछ लोग एनिमा प्रथम बार लेने के कारण पेट को अकडा कर रखते हैं, जिससे पानी ऊपर नहीं चढ़ता, या नली सीधी न लगाने पर भी पानी ऊपर नहीं चढता, उस समय नली थोड़ी बाहर निकाल कर फिर लगाने से एवं रोगी को बातों में लगाने पर पानी ऊपर चढ़ने लगता है। जितना पानी जा सके उतना जान देना चाहिए। शौच जाते समय ज़ोर नहीं लगाना चाहिए। मल व पानी अपने आप निकलने दें। निश्चित मन से १५-२० मिनिट शौच स्थान पर बैठे रहें ताकि पानी पूरा निकल जाय।

२. मिट्टी की पट्टी:—मिट्टी की पट्टी के लिए बहते नाले की मिट्टी या तालाब की मिट्टी जिस में बदबू न आती हो लेना चाहिए या काली चिकनी मिट्टी जो खेतों में मिलती है उसे धूप में सुखा कर कूट छान कर किसी मिट्टी के पात्र में भिगो देना चाहिए। २-३ दिनों के लिए एक ही बार भिगो लेना चाहिए जिससे हर समय मिट्टी ठंडी मिल सके। मिट्टी इतनी पतली न हो कि स्थान पर रखने के बाद बहने लगे। न ज्यादा पतली हो न ज़्यादा सखत।

यह पट्टी १५ मिनिट से लेकर ३० मिनिट तक रख सकते हैं। १२ इंच लंबा-चौडा एक कपड़ा लेकर उसे भिगो कर निचोड़ लेना चाहिए। इसके बाद उसके बीच में ५ इंच चौड़ा ८ इंच लम्बा एक इंच मोटाई में मिट्टी रख कर कपड़े को चारों ओर से मिट्टी पर ढक दें। इस पट्टी को पेडू पर बाजू के दोनों हड्डियों के बीच रख दें। रोगी की स्थिति के अनुसार समय कम ज़्यादा कर सकते हैं।

३. कटि स्नान :—इस स्नान के लिए टब में ठंडा पानी इतना डालना चाहिए कि बैठने पर पानी नाभी तक आ जाय। पैर टब के बाहर रखे आराम के लिए किसी छोटी चौकी पर रखे जा सकते हैं। टब में, पूरे वस्त्र उतार कर बैठना चाहिए। बैठ कर एक मुलायम कपड़े से पेडू की दाहिनी ओर से बाई ओर और बाई ओर से दाहिनी ओर धीरे-धीरे रगड़ना चाहिए। दबा कर या ज़ोर से न रगड़े। यह स्नान ५ मिनिट से ३० मिनिट तक शक्ति के अनुसार किया जा सकता है। कटि स्नान के बाद पुनः शरीर में गर्मी लाना आवश्यक है। कमज़ोर को कम्बल ओढ कर सोना चाहिए और दूसरे लोगों को शक्ति के अनुसार आधा घंटा टहलते रहना, या व्यायाम द्वारा उष्णता लानी चाहिए।

४. सेहन स्नान या लिंग स्नान :— इस स्नान के लिए एक फुट लम्बी, एक फुट चौड़ी' ८ इंच ऊँची लकड़ी की चौकी हो, जो आगे से बीच में चन्द्राकार कटी हो। चौकी के अभाव में चार ईंटे एक पर एक रखकर भी काम लिया जा सकता है। टब में इतना पानी होना चाहिए कि वह टब में रखी हुई चौकी या ईंटों पर दो इंच ऊपर आ जाय चौकी पर पूरे वस्त्र उतारने के बाद पैर टब के बाहर रखकर बैठ जाएँ। फिर मूत्रेन्द्रिय के घूंघट

को अंगुष्ट और उसके दोनों उँगलियों के बीच पकड़ कर त्वचा के अग्र भाग को स्वच्छ मुलायम कपड़े से धीरे-धीरे रगढ़ना या छूना चाहिए। मूत्रेन्द्रिय पानी में डूबी हुई रहनी अवश्यक है।

स्त्रियों के लिए भी बैठने का ढंग पुरुषों के समान ही है। बाद में योनि के दोनों ओर के होठों को धीरे-धीरे धोना चाहिए। यह स्नान ५ मिनिट से ३० मिनिट तक लिया जा सकता है। लेनेवाले की स्थिति और शक्ति के अनुसार समय निर्धारित करना चाहिए। बाद में गर्मी लाने के लिए ओढ़कर सोना या व्यायाम करना आवश्यक है।

५. गरम पाद स्नान या पैरों का नाहन।—गरम पाद स्नान के लिए किसी स्टूल या कुर्सी पर बैठ कर पैरों को गरम पानी से भरी बाल्टि में या किसी चौड़े मुँह के बरतन में रखना चाहिए। बरतन में पानी इतना हो कि पानी घुटने के नीचे तक आ जाय। पानी सह सकने लायक गरम हो। पानी ज्यों-ज्यों ठंडा होता जाय बाल्टि में से थोड़ा पानी निकाल कर उतना ही दूसरा तेज़ गरम पानी मिला देना चाहिए। नाहन लेनेके पूर्व ठंडा पानी पीना चाहिए। स्टूल या कुर्सी पर बैठने के बाद एक कम्बल इस प्रकार ओढ़ना चाहिए कि सारा शरीर ढंका रहे और बाल्टी भी कम्बल में आ जाय, सर पर ठंडे पानी का भिगोया हुआ तौलिया रखना आवश्यक है। उसे बीच-बीच में भिगोते रहना चाहिए। १५ मि. से ३० मि. तक यह पाद स्नान ले सकते हैं। पाद स्नान के बाद तुरंत ठंडे पानी से पूर्ण स्नान करना चाहिए।

६. गरम कटि स्नान या टब स्नान:—इस स्नान के लिए टब में सहसकने योग्य गरम पानी उतना ही डालें जितना कि

कटि स्नान के लिए आवश्यक बताया है। उसी प्रकार निर्वस्त्र हो कर पैर बाहर रखते हुए बैठ जाएँ पर कटि स्नान की तरह इसमें पेडू रगड़ने की आवश्यकता नहीं है। पैरों को एक बरतन में ठंडा पानी डाल कर उस में रख दें। बाद में एक कम्बल इस प्रकार ओढना चाहिए कि सिर के अतिरिक्त टब के साथ सारा शरीर ढँक जाय। सर पर ठंडे पानी से भीगा कपड़ा रखें। इस प्रयोग के पूर्व एक ग्लास ठंडा पानी पीना चाहिए। गरम टब के बाद आवश्यकतानुसार कटि स्नान भी करते हैं, पर सब के लिए उसकी आवश्यकता नहीं होती। केवल पूर्ण स्नान कर लेना काफ़ी है। यह स्नान २ मि. से १५ मि. तक ले सकते हैं।

७. धूप स्नान (आतपस्नान):— इस स्नान के लिए अधिकतर केले के पत्तों का ही प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त अरवी, कमल और नीमके पत्तों से भी यह स्नान दिया जा सकता है।

पहले एक कम्बल बिछाकर उस पर चादर बिछा कर रोगी के लंवाई और चौड़ाई के बराबर चादर पर पत्ते जमा दें। रोगी को निर्वस्त्र लिटाकर ऊपर से सारे शरीर को पत्तों से ढंक दें। सर को छोड़ कर गरदन के बीच चादर और फिर कम्बल को कस लेना चाहिए। सर पर एक भिगा कपड़ा रख कर उसको भी पत्ते से ढांक दें। धूप स्नान के पहले एक ग्लास पानी और बीच में भी प्यास लगे तो पानी पिलाना चाहिए। जो बहुत कमज़ोर हैं और जिनको हृदय रोग है उन्हें छाती को गीली पट्टी लपेट कर धूप स्नान लेना चाहिए। अच्छी तरह पसीना निकलने के बाद तुरंत ठंडे पानी से स्नान कर लेना चाहिए। यह स्नान १० मि. से लेकर ३० मि. तक आवश्यकतानुसार ले सकते हैं।

८. **पूरी गीली पट्टी** :—सारे शरीर की गीली पट्टी के लिए एक कम्बल पर ठंडे पानी में भीगोसी हुई सूति चादर बिछानी चाहिए और उस पर खुले बदन लेट कर सारे शरीर को पहले चादर से बाद में कम्बल से लपेट देना चाहिए। सर पर एक कपड़ा भिगो कर रखना चाहिए। पूरी गीली पट्टी लेने के पूर्व एक ग्लास ठंडा पानी पीना जरूरी है। यह पट्टी १५ मि. से लेकर ४० मि. तक आवश्यकतानुसार ले सकते हैं। बाद में पूर्ण स्नान कर लेना चाहिए। जो कमज़ोर हैं वे ठंड़े पानी से भिगे तौवेल से सारे शरीर को पोंछ लें।

९. **छाती की गीली पट्टी** :—छाती की गीली पट्टी के लिए ६' लंवा १' चौड़ा सूती कपड़ा उतना ही लम्बा चौड़ा ऊनी कम्बल का कपड़ा आवश्यक है। सूती कपड़े को ठंडे पानी से भिगोकर निचोड़ने के बाद हाथों को बाहर रख कर बग़ल के नीचे से चारों ओर लपेट देना चाहिए। उसके ऊपर ऊनी कपड़े को चारों ओर लपेट देना चाहिए। यह लपेट १५ मि. से लेकर ४० मि. तक रख सकते हैं।

१०. **बाष्प स्नान या भाप स्नान** :— बुनी हुई चारपाई पर लेट कर या बेत की बुनी हुई कुर्सी पर बैठ कर स्नान लिया जाता है। जिसे भाप देना हो उसे पहले एक ग्लास ठंडा पानी पिलाना चाहिये। फिर निर्वस्त्र करके चारपाई पर लिटा कर या कुर्सी पर बिठा कर इस प्रकार ऊपर कम्वल से ढंक देना कि सर के अतिरिक्त पूरा शरीर चारपाई या कुर्सी सहित पूरी तरह ढक जाए। कम्बल ज़मीन तक लटकती रहे जिससे भाप बाहर न जा सके। सर पर भिगा हुआ ठंडा कपड़ा रखें। एक बर-

तन में ३ भाग पानी डालें। १ भाग खाली रहने दें। पानी अच्छी तरह उबल जाने दें। अच्छी तरह गरम हो जाने के बाद कुर्सी या चारपाई के नीचे वह बरतन रखें उस पर का ढक्कन धीरे धीरे खोलें। एकदम खोलने से भाप तेज़ी से आयेगी, जो कष्टप्रद हो सकती है। इसलिए ज्यों-ज्यों भाप की तेज़ी कम हो त्यों-त्यों ढक्कन ज़्यादा खोलते जाएँ। पसीना आने के बाद तुरंत ठंडे पानी से स्नान करा दें और जो दुर्बल हैं उन्हें ठंडे पानी से भिगे कपड़े से सारा शरीर पोंछ लें। यह स्नान १० मिनिट से लेकर ३० मिनिट तक आवश्यकतानुसार दिया जा सकता है।

स्वास्थ्य का मापदण्ड क्या है ?

★ आपको निर्विघ्न नींद आती है ?

★ आपको दस्त साफ़ होता है ?

★ आपको भूख लगती है ?

★ आपको सारे दिन काम में उत्साह रहता है ?

★ आपकी छाती पेट से बड़ी तो है ?

★ आप सभी से मीठे बोलते हैं ?

यदि नहीं तो फिर

आपके रहन सहन और विचारों में सुधार की ज़रूरत है

स्वास्थ्य जीवन के लिए औषधियों से दूर रहने की ज़रूरत है

स्वास्थ्य रक्षा के पंचतन्त्र

१. दिन में दो ही वार खाओ ।

२. दिन में कम से कम दो सेर पानी पीओ ।

३. प्रति दिन एक घण्टा व्यायाम करो ।

४. सप्ताह में एक दिन उपवास करो ।

५. प्रति दिन दोनों समय प्रार्थना करो ।

डा० बी० वेंकटराव

स्वास्थ्य रक्षा के पंचतन्त्र

बीमार पड़ने के बाद इलाज करने की अपेक्षा बीमारी से हमेशा बचने का तरीका जानना ही विवेकता है। लेकिन इस बात का खेद है कि ऐसा तरीका आजकल समाज में कहीं भी सिखाया नहीं जाता।

"धर्मार्थ काममोक्षाणाम् आरोग्यमूलमुत्तमम्"

अर्थात् चाहे धर्म का पालन करना हो, या पैसा कमाना हो, संसारिक सुख भोगना हो, या मोक्षके लिये साधना करना हो, सबके लिये स्वास्थ्य का होना अनिवार्य है। इसलिये हर व्यक्ति को, स्वास्थ्य किसे कहते हैं ? इसकी रक्षा कैसी की जाय ? इन विषयों के बारे में पूरी तरह जानकारी रखनी चाहिए। तभी वह स्वस्थ रह सकता है। हमेशा बीमारी से अपने आपको बचाने में समर्थ रहता है।

प्रत्येक मनुष्य की यह इच्छा होती है कि पेट भर खाना मिले, पहनने को कपड़ा मिले और रहने के लिये मकान हो, और यह भी चाहता है कि इनके लिये किसी पर निर्भर न रहे बल्कि स्वावलम्बी बने। इसी तरह स्वास्थ्य के बारे में भी इन्सान को स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न करना चाहिए तभी इस जीवन में सुख और शांति मिलती है।

आरोग्यवान् के लक्षण

"नित्यम् हिताहार विहार सेवी, समीक्षाकारी
विषयेस्वसक्तः दाता समः सत्यपरः क्षमावान्
आप्तोपसेवी भवतीतु अरोगः"

हमेशा आहार विहार नियमों का पालन करने वाला, विषय सुखों से अनासक्त, दाता समभावी, सत्यनिष्ठा रखने वाला, क्षमावान, दीन-दुखियों की सहायता करने वाला और हमदर्द ही आरोग्यवान है।

स्वास्थ्य अर्थात् शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार से स्वस्थ होना चाहिए तभी वह स्वस्थ या संपूर्ण आरोग्यवान है। यह अमूल्य स्वास्थ्य बाज़ार में खरीदी जाने वालीं चीज़ नहीं है। यह तो साधना से ही प्राप्त होती है।

"आहाराचार चेष्टासु सुखार्थी प्रत्येचेहच
परम् प्रयत्नमातिष्टेत् बुद्धिमाने हितसेवने"

अर्थात् बुद्धिमान, सुख और शांति से जीवन बिताने के लिये जीवन भर आहार और विहार के नियमों का पालन करता है

आज के समाज में आहार और विहार के नियमों का पालन करना सभ्यता के खिलाफ़ समझा जाता है। इसलिये स्वास्थ्य को पैसा देकर बाज़ार में खरीदने का प्रयन्त करते हैं और रास्ते से भटक रहे हैं। इसीका नतीजा है कि आज करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी असाध्य रोगों से पीड़ित हो तकलीफ उठा रहे हैं और मानव जाति दिनों-दिन शारीरिक तथा मानसिक हर प्रकार से क्षीण होती जा रही है। यदि इस क्षीण होती मानव जाति को बचाना है तो केवल एक ही रास्ता है, वह है आहार व विहार को सुधारना।

आहार-विहार नियमों के द्वारा जीवन सुधारने का शिक्षण पाना और लोगों को शिक्षण देना।

साधना का नाम लेते ही लोगों के दिमाग़ में अक्सर यह भावना आती है कि इसके लिये घर-बार तथा संसार, सब कुछ

छोड़ कर जंगल में जाना होगा। साधना के लिये जंगल जाने की ज़रूरत नहीं है बल्कि सभ्यता के नाम पर आज हम जो अप्राकृतिक जीवन बिता रहे हैं, उसको छोड़ कर प्राकृतिक जीवन की ओर आना है। बस यही साधना है।

काफी सोच विचार करने के बाद आज के समाज की हालत को दृष्टि में रखते हुए और मेरे 18 साल के अनुभव के बाद आयुर्वेद के स्वास्थवृत्त तथा प्राकृतिक जीवन के आधार पर आरोग्य रक्षा के लिये पंचतंत्र तैयार किया हूँ।

स्वास्थ्य रक्षा के पंचतंत्र

(१) दिन में दो ही बार खाओ।
(२) दिन में कम से कम दो सेर पानी पीओ।
(३) प्रतिदिन एक घंटा व्यायाम करो।
(४) प्रतिदिन दोनों समय प्रार्थना करो।
(५) सप्ताह में एक दिन उपवास करो।

इन नियमों का पालन करते हुए ब्रह्मचर्य द्वारा शुक्र-धातु की रक्षा करनी चाहिए।

१. प्रतिदिन दो ही बार क्यों खाना चाहिये ?

कौन, कब और कितना खाना चाहिये ? यदि इस समस्या का परिष्कार कर सके तो वह व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ता।

कौन–आयु तथा अपनी-अपनी वृत्ति के अनुसार निर्णय करना होगा।

कब–इसका भी निर्णय हर व्यक्ति को अपने काम के अनुसार सूर्योदय के बाद तथा सूर्यास्त से पहले समय निर्धारित करके ठीक उसी समय पर खाना चाहिए। इसलिये कि "अकाले अतिचल्पंवा अजीर्णम् भोजनम विषम्" अर्थात् अकाल

में थोड़ा बहुत भी खाये तो उससे अजीर्ण होता है (जो कि सब रोगों का मूल कारण है) और जहर का रूप लेता है। इसलिये सकाल में ही भोजन करना चाहिए।

क्या खाना चाहिये ?

जहाँ तक हो सके प्रकृति के निकट रहने वाले पदार्थों का सेवन करें, हम यह प्रत्यक्ष देखते हैं कि प्रकृति के आदेशानुसार जीवन बिताने वाले पशु-पक्षी निरोग तथा सुख और शांति से जीवन बिता रहे हैं।

आहार को दो प्रकार में विभाजित किया जा सकता है।

(१) **अपक्व आहार:**– कच्चा आहार (बिना पकाया हुआ) जैसे फल, तरकारी, कन्द और कच्चा दूध आदि।

(२) **पक्वाहार:**– पकाया हुआ आहार। इसके दो प्रकार हैं। (अ) सात्विक आहार (आ) उत्तेजक आहार। सात्विक आहार में बिना मिर्च-मसाले का साग, रोटी, दही आदि आते हैं। उत्तेजक आहार में चाय, काफ़ी, सिगरेट, मिर्च-मसाले और मांस आदि आते हैं। इसी उत्तेजक आहार से ही बीमारियाँ आती हैं।

जिस मौसम तथा जिस प्रांत में जो-जो फल और तरकारी मिलते हैं वे वहाँ के लोगों के लिये स्वास्थ्य प्रदान तथा अमृत समान होता है। फल का नाम लेते ही झट से लोगों का दिमाग अंगूर, अनार, सेब आदि की ओर जाता है और वे समझते हैं कि वे अमीरों के लिये ही हैं, हमारे लिये नहीं। इन सबके लिये पैसा भी बहुत चाहिये। उनका यह विचार गलत है। मध्यवर्ग तथा मज़दूर लोग भी यदि वे चाय, पान, सिगरेट, सेंदी और गांजा आदि छोड़ कर उसके लिए जो पैसा खर्च करते हैं

उससे मौसमी फल खरीद कर खायें तो कभी महँगा नहीं पडता, क्योंकि मौसमी फल हमेशा सस्ते ही होते हैं। जैसे आम के मौसम में आम और सीताफल के मौसम में सीताफल और केले के मौसम में केले बहुत सस्ते मिलते हैं।

कितने बार खाना चाहिये ?

"सायं प्रातर्मनुनुष्याणाम् अशनम् वेद निर्मितम्"

अर्थात् वेदों में सुबह और शाम केवल दो ही बार खाने का आदेश दिया गया है। इसी प्रकार आयुर्वेद में भी :–

"एक भुक्तम् महाभोगी
द्विभुक्तम् महायोगी
त्रिभुक्तम् महारोगी"

अर्थात् एक बार खाने वाला योगी है और दो बार खाने वाला भोगी यानी संसारी, तथा तीन बार खाने वाला रोगी हे (या रोगी बनने वाला है।) आर्य संस्कृति तथा साम्प्रदाय के अनुसार दो ही बार खाना श्रष्ठ है।

एल्लोपेथी सिद्धांत कहता है कि हर तीन-तीन घंटे में खाते रहो। जबसे यह सिद्धांत प्रचार में आया है तब से ही पाचनयंत्र संबंधी रोग जैसे वायु-विकार, मंदाग्नि, पेट में फोड़े आदि उत्पन्न हुए हैं। आज-कल अमेरिका वाले इस सत्य को समझने लगे हैं। इसी कारण उन्होंने एक नया सिद्धांत निकाला है कि "नो ब्रेक-फास्ट कॉंपियन, नाश्ता छोड़ो" इसलिये हर प्रकार से दो ही बार खाना उत्तम है। पानी के सिवा कुछ भी खाये या पीये वह भोजन होता है।

कितना खाना चाहिए ?

आज के इस वैज्ञानिक युग में यह भी एक समस्या बन गयी है। इस सवाल का समाधान प्रकृति हमें यही देती है कि जितना तुम पचा सकते हो उतना ही खाओ। इसका निर्णय आयु तथा अपने-अपने काम के अनुसार करना पड़ता है। जो शारीरिक श्रम अधिक करता है उनके लिये अधिक आहार चाहिये। और जो शारीरिक श्रम काम करते हैं उन्हें कम खाना चाहिये। शारीरिक श्रम अधिक करने वालों को पर्याप्त मात्रा में आहार नहीं मिल रहा है, इसलिये वे बीमार पड़ते हैं। जो शारीरिक श्रम बिल्कुल नहीं करते हैं उनको आवश्यकता से अधिक आहार मिलने के कारण अजीर्ण होकर वे भी बीमार पड़ते हैं। आवश्यकता से कम खाना भी नुक्सान है और आवश्यकता से अधिक खाने से वह रोग का कारण बनता है। इसलिये हमें यह सोचना चाहिए कि कितना कम खा कर अधिक काम कर सकते हैं।

आज का विज्ञान कहता है कि अमुक व्यक्ति को इतना कैलोरिस की आवश्यकता है। ख़ैर कुछ हद तक मान लें। यदि वह व्यक्ति उस आहार को हजम नहीं कर सके तो सब बेकार ही है। इसलिये आयुर्वेद से :—

द्विभागे पूरयेदन्नैः तोयेनैकम् प्रपुरयेत्
मारुतस्य प्रचारार्थंशेषं वैचारशेषयेत्।

पेट के परिमाण के अनुसार आधा भाग आहार से, एक भाग पानी से और एक भाग वायु के लिये खाली रख कर भोजन करना चाहिए। अर्थात् हमेशा पेट भर न खा कर आधा पेट ही खायें। सारांश यही है कि उपरोक्त नियमानुसार दिन में केवल

दो ही बार प्रकृति के निकट रहने वाले आहार पदार्थ आधा पेट खायें तो कभी बीमार पड़ेंगे ही नहीं।

(२) कम से कम दो सेर पानी क्यों पीना चाहिये ?

बहुत लोग काफी, चाय, शरबत और सोड़ा-लेमन आदि पीने के आदी होने के कारण वे यह नहीं समझते कि शरीर के लिये पानी की ज़रूरत होती है। और हमें पानी पीना चाहिये। केवल भोजन के साथ ही कुछ लोग मजबूरी से और कुछ लोग जबरदस्ती से पानी पीते हैं। मिर्च-मसालों से मुंह जलता है इस लिये पानी-पीना पड़ता है। कुछ लोग यह समझ कर थोड़ा-बहुत पानी पीते हैं कि भोजन के साथ पानी पीने से भोजन जल्दी हजम होता है। और कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि जब प्यास ही नहीं लगती तो पानी क्यों पीना चाहिए ? प्यास लगने पर चाय, काफ़ी सोड़ा-लेमन आदि पीने से धीरे-धीरे प्यास भी लगना कम हो जाती है। इसका यह मतलब नहीं है कि शरीर को पानी की आवश्यकता नहीं है बल्कि शरीर पानी चाहता है लेकिन उसको महसूस नहीं करते।

शरीर के निर्माण में अधिकांश जल-धातु ही हैं। शरीर के सब कार्यों में जैसे पाचनक्रिया के लिये, रक्तप्रसारण के लिये और बहिष्करण क्रिया के लिए पानी का होना बहुत ज़रूरी है। प्रतिदिन कुछ प्रत्यक्षरूप में, कुछ अप्रत्यक्षरूप में लगभग ढ़ाई-तीन सेर जल धातु का शरीर से बहिष्करण होता है। उसकी पूर्ति करने के लिये कम से कम दो सेर पानी तो रोज पीना ही चाहिए। कुछ जल धातु का अंश भोजन से मिल जाता है। यदि हम इसकी पूर्ति नहीं करें तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। जैसे

कब्ज, अनिद्रा, अतिदाह और जलन आदि रोग पानी की कमी के कारण ही होते हैं। इसलिए प्यास न लगने पर भी धीरे-धीरे पानी पीने की आदत ड़ालें तो क्रमशः प्यास अपने आप महसूस होने लगेगी।

भोजन के पहले एक घंटा तथा भोजन के बाद भी एक घंटा ठहर कर ही पानी पीना चाहिए। इस तरह सबेरे उषा:पान से लेकर रात के सोने तक कम से कम दो सेर पानी पीना ज़रूरी है। हर बार पावसेर से अधिक न पीयें।

आयुर्वेद में पानी पीते समय भी कुछ ध्यान में रखने योग्य बातें बतायी गयी हैं।

"तृषितस्तु न चाश्नीयात् क्षुधितो-न-पिवेज्जलम।
तृषितस्तु भवेदगुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी।"

अर्थात् प्यास लगने पर भोजन करने से गुल्मरोग तथा भूख लगने पर पानी से जलोदररोग होता है।

इसलिए प्यास लगने पर प्यास को पानी से ही बुझाना चाहिए। लेकिन खेद इस बात का है कि सभ्य समाज ही इन दो नियमों का उल्लंघन कर रहा है। भूख लगने पर भोजन न कर चाय, काफ़ी आदि मादकद्रव्य-पदार्थों का सेवन करके भूख का नाश कर देते हैं और प्यास लगने पर पानी न पीकर प्यास को सोड़ा-लेमन तथा आइस्क्रीम आदि खा कर प्यास बुझाने का प्रयत्न करते हैं। इसी का फल है—आज जो क्यान्सर की बीमारी तीव्रता से फैल रही है। इसके अतिरिक्त जीर्णाशय संबंधी कई रोग भी हो रहे हैं।

"जीवनम् जीविनाम् जीवो जगतसर्वम् तु तन्मयम्
ना तोत्यंत निषेधेन कदा चिद्वारी वार्यंते"

अर्थात् संसार में समस्त जीवों के लिये जल ही जीवनाधार है। इसलिये चाहे किसी भी परिस्थिति में हो इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जल जो जीवनाधार है उसको छोड़ अन्य पेय उपयोग करने के कारण ही स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। भगवान की सृष्टि में मनुष्य को छोड़ कर बाकी सब जीव प्यास को पानी से ही बुझाते हैं। प्यास लगने पर ठंडे जल का ही उपयोग करें। खास परिस्थिति में ही ठंड अधिक लगने पर या मलेरिया बुखार के ठंड की अवस्था में और कमज़ोर रोगी को ही कभी-कभी आवश्यकतानुसार गरम पानी का उपयोग कर सकते हैं।

(३) एक घंटा यायाम क्यों करना चाहिए ?

आज हर व्यक्ति यही सोचता है कि कम परिश्रम करके अधिक पैसा या अधिक लाभ पायें। आज इस प्राकृतिक नियम को भूल गये हैं कि खाया हुआ भोजन श्रम करने पर ही हज़म होता है। और इससे स्वास्थ्य तथा आनंद मिलता है। स्वास्थ्य की रक्षा के लिये शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के श्रम चाहिए। जिन्हें भगवान की कृपा से बिना हाथ-पैर हिलाये घर बैठे पेट भर खाना मिलता है उन्हीं लोगों को व्यायाम अवश्य करना चाहिए। हम यह प्रत्यक्ष देखते हैं कि बड़े-बड़े घरों में ही बड़ी-बड़ी बीमारियाँ अधिक संख्या में होती हैं।

व्यायाम—व्यायाम के दो प्रकार हैं।

(१) तीव्र व्यायाम, (२) सौम्य व्यायाम,

तीव्र व्यायाम— दण्ड, बैठक, कुश्ती लड़ना, डबलबार, वेटलिफ्टिंग आदि आते हैं।

योगासन, सूर्यनमस्कार, प्राणायाम और घूमना ये सौम्य

व्यायाम हैं। चक्की पीसना भी सौम्य व्यायाम में आता है।

तीव्र व्यायाम करनेवालों के लिये अधिक आहार तथा अधिक विश्रांति की आवश्यकता होती है। उनका सारा समय खाना तथा आराम करना, व्यायाम करना इसी में ही गुज़र जाता है। उन्हें मानसिक शक्ति तथा आध्यात्मिक चिंतन करने का अवसर ही नहीं रहता। इसलिये बड़े-बड़े पहलवान लोग कुश्ती लड़ने के काम में ही आते हैं। उनसे दूसरा काम नहीं होता। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वे व्यायाम नहीं कर पाते। लेकिन खाना तो उतना ही चालू रहता है। उसको वह कम नहीं कर पाते। इसी कारण तीव्र व्यायाम करनेवाले आयु बीतने पर संधिवात, गठिया, मोटापा और हृदरोग आदिरोगों से पीड़ित हो उनका देहांत होता है। तीव्र व्यायाम सब लोग सभी अवस्था में नहीं कर सकते।

सौम्य व्यायाम करनेवालों के लिये किसी प्रकार के साधनों की आवश्यकता नहीं रहती। इसके लिये न आधिक खाने की ज़रूरत है और न अधिक आराम की। बीच में छोड़ने पर भी कोई नुकसान नहीं होता। यह स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सबके लिये सर्वोत्तम व्यायाम है। इससे शरीर तथा मन दोनों दृढ़ होते हैं। बाह्य तथा आंतरिक सब अवयवों को समानरूप से व्यायाम होता है। योगी इसी व्यायाम द्वारा विकार का बहिष्करण कर शरीर तथा मन दोनों को हमेशा शुद्ध रखते थे।

"सर्वे रोगा: मलावशा:"

अर्थात् सब रोगों का मूल कारण शरीर में विकार जमा होना ही है। इसलिये योगासन का नियमित रूप से हमेशा करते

रहें तो शरीर शुद्ध रहता है और स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

"युवा वृद्धोतिवृद्धोवा व्यधितो दुर्बलोपि वा
अभ्यासात् सिद्धिमाप्नोति सर्वं योगेश्वतन्द्रितः"

युवक हो या वृद्ध, रोगी हो या निर्बल, योगाभ्यास द्वारा सिद्धि पा सकते हैं। योगचिंतामणि में बताया गया है कि स्त्रियाँ भी योगाभ्यास कर सकती हैं। ऋतुश्राव के समय, तथा गर्भवती होने पर तीन मास पश्चात् और प्रसव के एक महीने तक व्यायाम नहीं करना चाहिए। ऐसी अवस्था में केवल दोनों समय शक्ति के अनुसार घूमना तथा घर के काम-काज करना काफ़ी है।

आहार-विहार नियमों का पालन करते हुए योगाभ्यास करें तो ही लाभ होता है। तभी मानसिक और आत्मिक शक्ति प्राप्त होती है। इसलिये हर व्यक्ति को स्वास्थ्य रक्षा के लिए रोज एक घंटा व्यायाम करना अनिवार्य है।

आज के समाज में किसी से भी कहें कि "देखो भाई व्यायाम करो" तो कहते हैं कि व्यायाम करने के लिए फ़ुर्सत कहाँ है? स्वास्थ्य हो तो ही दुनियां में सब कुछ है। ऐसे अमूल्य स्वास्थ्य के लिए यदि एक घंटा समय नहीं निकाल सकें तो स्वास्थ्य की रक्षा करना असाध्य है।

(४) प्रतिदिन दोनों समय प्रार्थना क्यों करें ?

आज के भौतिकवादी समाज का यह सवाल है। अक्सर लोग पूछते हैं कि प्रार्थना और स्वास्थ्य दोनों का आपस में क्या संबंध है! पू० बापू एक जगह कहते हैं कि शरीर को खाना न

मिलने पर जिस तरह तड़पता है, उसी तरह प्रार्थना न करने पर मन को तड़फ़डाहट होनी चाहिए। तभी प्रार्थना के महत्व को समझ पाते हैं। जिस तरह शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है उसी तरह प्रार्थना मन का भोजन है। मन और शरीर दोनों में अविनाभाव (परस्पर) संबंध रहता है। जब शरीर और मन दोनों स्वास्थ रहते हैं तभी संपूर्णानन्द का अनुभव कर सकते हैं। इन दोनों को अपने अधीन रखने के लिए प्रार्थना आवश्यक है। यह मेरा कहना और स्वानुभव ही नहीं बल्कि कई महान् आत्माओं के अथक साधनाओं का फल और सत्य है।

अपने देश के सनातन धर्म में यही प्रार्थना संध्यावंदन के रूप में प्रचलित है। आज भी कई लोग जो सनातन धर्म को मानते हैं वे बराबर दोनों समय संध्यावन्दन करते हैं। संध्याकाल में प्रार्थना करना ही संध्यावन्दन है।

दोनों समय प्रार्थना क्यों करना चाहिए ?

रात के समय मनुष्य बिलकुल बहोश पड़ा रहता है। जब नींद आ जाती है तो वह मृत समान अपने आप की रक्षा करने में असमर्थ होता है। ऐसी सुषुप्तावस्था में चाहे कुछ भी हो सकता है। चोर आकर खून कर सकता है। कोई ज़हरीला साँप आकर काट सकता है। या मकान के गिरने पर मर जा सकते हैं। इस तरह सोते समय बिलकुल असहाय स्थिति में पड़े रहते हैं। ऐसी असहाय स्थिति में जो महान्-शक्ति रात भर हमारी रक्षा करती है क्या उसके लिए सबेरे उठते ही कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य नहीं हैं ? आज के समाज में अगर कोई आधा कप चाय या आधा आने का पान खिलाये या

एक पैसे का सिगरेट पिलाये तो उसको थैंक्स, शुक्रिया और धन्य-वाद दिये बिना नहीं रहते हैं। इससे बढ़ कर अमूल्य और महान् शक्ति जो रात भर हमारी रक्षा करती है उसे भगवान कहिये या अल्ला कहिये कुछ भी कहा जाय उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा कर्तव्य नहीं है ?

ऐसी महान-शक्ति को प्रातःकाल हृदयपूर्वक धन्यवाद देना ही प्रातःकालीन प्रार्थना है। इसके अतिरिक्त प्रातःकाल प्रार्थना करते समय मन में ऐसी भावनायें रखनी चाहिए कि "सबेरे होते ही अपने काम पर जा रहा हूँ, मेरे काम में किसी प्रकार की ग़लती न होने पाये, मैं अपने धर्म, कर्तव्य का पालन कर सकूँ चाहे मुझे कितनी ही तकलीफ़ क्यों न उठानी पड़े, चाहे कोई कुछ भी कहे लेकिन मुझे ऐसी शक्ति दे ताकि मेरा मन विचलित न हो और मैं अपने धर्म का पालन कर सकूँ।" जो व्यक्ति इस तरह भगवत्-भीति से काम करता है वह कभी ग़लत या पाप नहीं कर सकता। यदि हर व्यक्ति के मन में ऐसी सद्भावनाओं को जागृत कर सकें तो समाज में सुख और शांति कायम रहेगी।

दिन भर काम करके शाम में जब घर लौटते हैं तब थोड़ी देर के लिये आत्मा परिशोधन कर लेना चाहिए कि "आज मेरे काम में क्या-क्या ग़लतियाँ हुई, यदि कोई ग़लती न हो तो धन्यवाद दें और अगर कोई ग़लती हो जाय तो उसके लिये क्षमा माँगे तथा ऐसी शक्ति देने की प्रार्थना करें कि आगे चल कर कभी भी ऐसी ग़लती न होवे रात हो रही है हे भगवान् ! सुषुप्तावस्था में मेरी रक्षा कर" इस प्रकार दिन भर काम करने के बाद सायंकाल कुछ देर के लिए आत्मपरिशोधन करना ही सायंकालीन प्रार्थना है।

आज समाज इस अमूल्य प्रार्थना साम्प्रदाय को भूलकर भौतिकवादी बन गया है। और शरीर को ही सब कुछ समझने लगे हैं। प्रार्थना से मन मज़बूत बनता है, मन के मज़बूत होने पर शारीरिक बीमारियाँ होती ही नहीं। अगर छोटी-मोटी बीमारी हो तो भी अपने आप भाग जाती है।

अतएव स्वास्थ्य रक्षा के लिये प्रतिदिन दोनों समय प्रातः व सायंकाल इष्टदेव की प्रार्थना करना आवश्यक है।

सप्ताह में एक दिन उपवास क्यों करें ?

हर ऑफिस तथा हर यंत्र को कम से कम सप्ताह में एक दिन की छुट्टी ज़रूर मिलती है। लेकिन इस मानवयंत्र को तो रात-दिन काम करना पड़ता है। खासकर पाचनयंत्र को आराम नहीं मिलने के कारण ही शरीर रोगग्रस्त होता है। यदि सप्ताह में एक दिन भोजन बन्द करके २४ घंटे केवल पानी पीकर उपवास करें तो शरीर को कुछ आराम मिलता है। और वह अधिक दिन तक अच्छी तरह काम कर सकता है।

साधारणतः उपवास यानी रोज का भोजन छोड़कर उसकी जगह फल, दूध, मिठाई और अन्य पक्वान खाना ही उपवास समझते हैं। ऐसे उपवास से फ़ायदे की जगह नुक्सान ही अधिक होता है। यदि २४ घंटे केवल पानी पीकर उपवास करें तो बाकी ६ दिन में अपने आहार-विहार की गलतियों के कारण संचित विकार को शरीर अपनी शक्ति का उपयोग कर बहिष्कार अवयवों (मल, मूत्र स्वेद, श्वासोच्छ्वास) द्वारा बहिष्करण कर अपने आपको शुद्ध और स्वास्थ्य रखता है।

बहुत लोगों को इस बात का डर है कि उपवास करें तो कमज़ोरी आ जायगी और काम नहीं कर सकेंगे। उनका यह ख्याल बिलकुल गलत है। अब तक आदत न होने के कारण शुरू-शुरू में तकलीफ़ मालूम पड़ती है। लेकिन आदत होने पर कुछ भी तकलीफ़ नहीं होगी और काम भी कर सकेंगे।

उपवास काल में कम से कम दो-तीन सेर पानी पीना न भूलें। पानी न पीने पर कमजोरी, चक्कर आना, सिर में दर्द और हाथ-पैर खींचने लगते हैं। हो सके तो गुन-गुने पानी का एनीमा लेना चाहिए। नहीं तो मलाशय में मल रहने पर अधिक उष्णता पैदा होती है और मल सूख कर सख्त बन जाता है। जिस तरह मशीन को ओवराइलिंग करने पर सुचारु रूप से काम करता है, उसी तरह शरीर भी उपवास से शुद्ध होकर अच्छा काम करता है।

उपवासकाल में मन हमेशा खाने के पीछे दौड़ते रहता है। तब मन को किसी न किसी काम में लगा कर खाने की चिंता को दूर करना चाहिए। कोई आध्यत्मिक ग्रंथ आदि पढ़ना या किसी काम में लगा कर मन को बिल्कुल प्रशांत रखनें का प्रयत्न करें। तेलुगु में एक कहावत है कि:–

"पाटि मीदि अम्मकु कूटि मीदे धोरणी"

अर्थात् जिसको काम नहीं रहता है और बेकार बैठे रहते हैं उनका मन हमेशा खाने के पीछे ही लगता रहता है।

उपवासकाल में निम्न-नियमों का पालन करें तो किसी भी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होगी।

(१) गुनगुने पानी से एनिमा लेना।

(२) दोनों समय ठंड़े पानी से सिर-स्नान करना।

(३) कम से कम दो-तीन सेर पानी पीना।

(४) मन को काबू में रखने का प्रयत्न करना।

स्वास्थ्य रक्षा के लिये वेदों में भी निम्न प्रकार बताया गया है :—

(१) दो बार खाना।

(२) दों बार मल विसर्जन।

(३) दो बार स्नान।

(४) दो बार प्रार्थना।

उपवास करना मामूली इलाज नहीं है। यह तो तप है। इससे सप्तधातुओं का शोधन होता है। इन्द्रियों को अपने क़ाबू में रखना ही तप है।

धर्मराज ने पितामह भीष्म से उपवास के विषय में पूछा तो भीष्म ने समझाया कि जिस तरह परतत्व या भगवान के बारे में समझाने के लिये माता से बढ़कर संसार में कोई नही, है उसी तरह संसार में उपवास से बढ़कर दूसरा तप नहीं है। माता बच्चों को बचपन में भगवान के बारे में सिखाती है कि यह भगवान हैं, इन्हें प्रणाम करो। इस तरह छोटी-छोटी वातों में माता परतत्व के बारे में समझाती है। बड़े होने पर वेद ही मार्ग-दर्शन करता है। ऐसे उपवास के बारे में समझनेवाले इतिहास और पुराण में और भी कई उदाहरण हैं।

यदि मनुष्य उपरोक्त सूत्रों के महत्व को समझ कर आचरण करें तो वह हमेशा स्वस्थ रहता है।

—

रोगी की दिनचर्या

सुबह ४ बजे		उठना, एक ग्लास पानी पीना शौच आदि।
४-३०		प्रार्थना
५ से ८ बजे		मिट्‌टी की पट्‌टी १५ मिनट या मेहस्नान या कटिस्नान १० मि०, बाद में घूमना या व्यायाम
७	,,	नीम्बू का पानी और शहद
१०	,,	भोजन
१	,,	रसाहार
३ से ४	,,	मिट्‌टी की पट्‌टी १५ मि० या कटि स्नान १० मिनट
५	,,	स्नान
६	,,	भोजन
७	,,	प्रार्थना
९	,,	सोना

नोट :— दोपहर में, और शाम को प्रार्थना के बाद आध्यात्मिक ग्रंथ का अध्ययन करना आवश्यक है।

प्रकृति प्रकाशन

बेगमपेट, हैदराबाद-१६

१.	स्वास्थ्य रक्षा के पंचतंत्र	—	०-६०
२.	रोग क्यों होता है	—	०-६०
३.	आसनचार्ट	—	१-००
४.	सूर्यनमस्कार चार्ट	—	०-५०
५.	आरोग्य की कुंजी चार्ट	—	०-५०
६.	मेरी प्रार्थना	—	०-३०